



Neutral Citation No. - 2026:AHC:32574

एएफआर

इलाहाबाद उच्च न्यायालय

आपराधिक अपील संख्या - 10405/2024

सोनू एवं 5 अन्य

.....अपीलार्थी(गण)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

.....प्रत्यर्थी(गण)

अपीलार्थी के अधिवक्ता : डी.के.त्रिपाठी

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता : शासकीय अधिवक्ता, मनोज कुमार श्रीवास्तव

न्यायालय संख्या - 51

माननीय न्यायमूर्ति अनिल कुमार-X

1. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता एवं राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री अमृत राज को सुना गया।
2. पुनरीक्षित पुकार में भी प्रतिवादी की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ।
3. वर्तमान आपराधिक अपील तहत धारा 14-A(1) अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम इस वर्तमान अपील को अनुमत किए जाने तथा विशेष न्यायाधीश, अ.जा./अ.ज.जा., जनपद-कन्नौज द्वारा वाद अपराध संख्या 627/2023, तहत धारा 147, 452, 323, 504, 506 भारतीय दण्ड संहिता एवं धारा 3(1)(d) अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम, थाना-कोतवाली कन्नौज, जनपद-कन्नौज से उद्भूत सत्र वाद संख्या 1374/2023 (राज्य बनाम सोनू उर्फ भगवान भक्त एवं अन्य) में पारित आक्षेपित आदेशों दिनांकित 21.08.2024, 27.06.2024 तथा 10.05.2024 तथा अन्य समस्त पारिणामिक आदेशों को अपास्त किए जाने हेतु प्रस्तुत की गई है।
4. उपर्युक्त विरचित विधिक प्रश्न पर विचार करने से पूर्व, आक्षेपित प्रकरण की कार्यवाहियों का उल्लेख करना समीचीन होगा। वाद अपराध संख्या 627/2023, तहत धारा 147, 452, 323, "अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



504, 506 भारतीय दण्ड संहिता एवं धारा 3(1)(d) अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम, थाना-कोतवाली, जनपद-कन्नौज में अपीलकर्तागण के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीकृत की गई थी। प्रकरण का अन्वेषण किया गया तथा विवेचनाधिकारी द्वारा दिनांक 15.9.2023 को अपीलकर्तागण के विरुद्ध आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया। विद्वान न्यायालय द्वारा उक्त आरोप-पत्र पर दिनांक 21.12.2023 को संज्ञान लिया गया। चूँकि अन्वेषण उस समय भी प्रगति पर था, अतः विवेचनाधिकारी द्वारा दिनांक 31.3.2024 को अनुपूरक आख्या तहत धारा 173(2) दण्ड प्रक्रिया संहिता इस निष्कर्ष के साथ प्रस्तुत की गई कि अपीलकर्तागण के विरुद्ध अभिकथन मिथ्या पाए गए। यह कहा जा सकता है कि आरोप-पत्र पर दिनांक 21.12.2023 को संज्ञान लिए जाने के आदेश के पश्चात् विवेचनाधिकारी द्वारा अंतिम आख्या प्रस्तुत की गई थी।

5. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया कि न्यायालय द्वारा दिनांक 21.12.2023 को आरोप-पत्र पर संज्ञान लिए जाने के पश्चात् दिनांक 7.8.2025 को अपीलकर्तागण के विरुद्ध आरोप विरचित किए गए। यह प्रस्तुत किया गया कि कार्यवाही तहत धारा 228 दण्ड प्रक्रिया संहिता, दिनांक 31.3.2024 को प्रस्तुत अंतिम आख्या पर विचार किए बगैर ही संचालित की गई। विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया कि दिनांक 7.8.2025 को अपीलकर्तागण के विरुद्ध आरोप विरचित किए जाने से पूर्व न्यायालय के लिए यह अनिवार्य था कि वह अंतिम आख्या दिनांकित 31.3.2024 पर समुचित आदेश पारित करे।

6. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री अमृत राज द्वारा अपीलकर्तागण के अधिवक्ता द्वारा प्रकट किए गए तथ्यों को स्वीकार किया गया।

7. विद्वान अधिवक्तागण द्वारा किए गए निवेदनों के आलोक में, इस अपील में विचारार्थ उद्भूत होने वाला संक्षिप्त प्रश्न यह है:-

"दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत विधिक प्रक्रिया तथा मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किए जाने वाले न्यायिक आदेश की प्रकृति क्या होगी जब प्रारंभिक आरोप-पत्र पर संज्ञान लिए जाने के पश्चात्,

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



धारा 173(8) के तहत संचालित अग्रिम अन्वेषण के उपरांत कोई पश्चातवर्ती 'अंतिम आख्या' (नकारात्मक आख्या) प्रस्तुत की जाती है?"

8. उपर्युक्त प्रश्न पर कोई मत व्यक्त करने से पूर्व दण्ड प्रक्रिया संहिता द्वारा उन शक्तियों के संबंध में उपबंधित प्रक्रिया पर विचार करना समुचित होगा जिनका आख्या तहत धारा 173(2) दण्ड प्रक्रिया संहिता प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् प्रयोग करने हेतु मजिस्ट्रेट आबद्ध है।

9. पुलिस आख्या प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् मजिस्ट्रेट द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के संबंध में (पूर्व में तहत धारा 173 दण्ड प्रक्रिया संहिता, अब धारा 193 भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता द्वारा शासित)। पुलिस आख्या प्रस्तुत किए जाने पर मजिस्ट्रेट के समक्ष कई पृथक्-पृथक् विकल्प उपलब्ध होते हैं तथा वे विकल्प नीचे संक्षेपित किए गए हैं:-

1. आख्या स्वीकार करना एवं संज्ञान ग्रहण करना

यदि आख्या (आरोप-पत्र) यह इंगित करे कि कोई अपराध कारित हुआ है, तो मजिस्ट्रेट:

संज्ञान ग्रहण: आख्या में प्रकट तथ्यों पर कार्यवाही करे तथा अभियुक्त के विरुद्ध आदेशिका (समन अथवा वारंट) जारी करे।

स्वतंत्र पुनर्विलोकन: मजिस्ट्रेट विधित: पुलिस आख्या से आबद्ध नहीं है। भले ही

पुलिस "अपर्याप्त साक्ष्य" के कारण अंतिम आख्या प्रस्तुत करे, तथापि यदि मजिस्ट्रेट यह पाए कि अभिलेख वास्तव में प्रथम दृष्ट्या अपराध प्रकट करते हैं, तो वह संज्ञान ग्रहण कर सकता है।

2. आख्या अस्वीकार करना (समापन अथवा अंतिम आख्या)

A. यदि पुलिस "समापन आख्या" (अंतिम आख्या) यह कहते हुए प्रस्तुत करे कि कोई अपराध नहीं पाया गया, तो मजिस्ट्रेट:

स्वीकार करे एवं कार्यवाही समाप्त करे: पुलिस से सहमत होते हुए अभियुक्त को उन्मोचित करे।

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



अनिवार्य सूचना: समापन आख्या स्वीकार करने से पूर्व, मजिस्ट्रेट को सूचनाकर्ता

अथवा पीड़ित को सूचित करना होगा तथा उसे "प्रतिवाद याचिका" के माध्यम से सुने जाने का अवसर देना होगा।

B. अग्रतर अन्वेषण का आदेश

यदि मजिस्ट्रेट यह पाए कि अन्वेषण अपूर्ण अथवा दोषपूर्ण था:

अग्रतर अन्वेषण हेतु निर्देश: धारा 175(3) भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता (पूर्व में धारा 156(3) दण्ड प्रक्रिया संहिता) के तहत अथवा अब धारा 193(9) भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता (पूर्व में धारा 173(8) दण्ड प्रक्रिया संहिता) में निहित शक्तियों के अंतर्गत पुलिस को अधिक साक्ष्य एकत्र करने का आदेश दे।

C. प्रतिवाद याचिका को परिवाद में परिवर्तित करना

यदि पीड़ित अथवा सूचनाकर्ता पुलिस आख्या (समापन आख्या) को चुनौती देते हुए प्रतिवाद याचिका दायर करे, तो मजिस्ट्रेट:

परिवाद के रूप में ग्रहण करे: मजिस्ट्रेट प्रतिवाद याचिका को तहत धारा 223 भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता (पूर्व में धारा 200 दण्ड प्रक्रिया संहिता) व्यक्तिगत परिवाद के रूप में ग्रहण कर सकता है तथा तत्पश्चात् दण्ड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 15 के अंतर्गत विहित प्रक्रिया के अनुसार अग्रसर हो सकता है।

याचिका खारिज करे: यदि शिकायतकर्ता को सुने जाने के पश्चात् भी प्रथम दृष्ट्या कोई प्रकरण नहीं बनता, तो मजिस्ट्रेट याचिका खारिज कर मूल पुलिस आख्या स्वीकार कर सकता है।

10. कोई विवेचनाधिकारी समग्र अन्वेषण एकसाथ पूर्ण कर सकता है। यदि वह ऐसा करे, तो उसे पुलिस आख्या प्रस्तुत करनी होगी। तथापि, धारा 173(8) दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत विवेचनाधिकारी को व्यापक शक्ति प्राप्त है कि वह प्रारंभिक आख्या (जिसे आरोप-पत्र अथवा अंतिम आख्या के रूप में जाना जाता है) प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् भी अन्वेषण जारी रखे।

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



यदि वह तत्पश्चात् ऐसे नवीन साक्ष्य अथवा तथ्य खोजे जो प्रकरण से प्रत्यक्षतः संबंधित तथा उसके लिए महत्वपूर्ण हों, तो वह अग्रतर अन्वेषण कर एक अन्य पुलिस आख्या प्रस्तुत कर सकता है। प्रारंभिक आख्या के पश्चात् प्रस्तुत ये पुलिस आख्याएँ भी पुलिस आख्याएँ ही हैं तथा उसी प्रारंभिक पुलिस आख्या का भाग बनती हैं। प्रारंभिक आख्या को "प्राथमिक आख्या" के रूप में वर्णित किया जा सकता है तथा पश्चातवर्ती आख्या को "अनुपूरक आख्या" के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। उच्चतम न्यायालय ने **विनय त्यागी बनाम इरशाद अली उर्फ दीपक एवं अन्य, 2013 (5) SCC 762** में अभिनिर्धारित किया कि अनुपूरक आख्या को न्यायालय द्वारा प्राथमिक आख्या के अनुक्रम में माना जाना चाहिए तथा जब न्यायालय ऐसी आख्या पर विचार करे तो विधि के वही उपबंध, अर्थात् धारा 173 की उपधारा (2) से उपधारा (6), लागू होंगे।

11. धारा 173(8) दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत अनुपूरक आख्याएँ निम्नलिखित प्रकार की हो सकती हैं:

प्रकार (A): अग्रतर मौखिक अथवा दस्तावेजी साक्ष्य जो पूर्ववर्ती पुलिस आख्या से अनुक्रम में हो तथा अपराधों के कारित होने का संकेत देता हो। इसे सामान्यतः अनुपूरक आरोप-पत्र के नाम से जाना जाता है।

प्रकार (B): प्रारंभिक आख्या के विपरीत निष्कर्ष, जिसमें अग्रतर अन्वेषण से यह प्रकट हो कि कोई अपराध कारित होना नहीं पाया गया, जिसे सामान्यतः अंतिम आख्या के नाम से जाना जाता है।

प्रकार (C): कोई सारभूत विषय-वस्तु न रखने वाली रिक्त औपचारिकता। इसे भी सामान्यतः अनुपूरक आरोप-पत्र कहा जाता है।

12. जैसा कि ऊपर विवेचित किया गया है, "अनुपूरक आख्या" मूलतः "प्राथमिक आख्या" के समान ही होती है तथा मजिस्ट्रेट को इसे प्राथमिक आख्या के भाग के रूप में ग्रहण करना चाहिए। तथापि, एक दुविधा उन विशेष परिस्थितियों में उत्पन्न होती है जहाँ मजिस्ट्रेट किसी अपराध के कारित होने को प्रकट करने वाली पूर्ववर्ती "प्राथमिक आख्या" के आधार पर संज्ञान ग्रहण कर चुका हो, किंतु विवेचनाधिकारी तत्पश्चात् समापन आख्या (सामान्यतः "प्रकार B

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



आख्या" कही जाने वाली) के रूप में अनुपूरक आख्या प्रस्तुत करे। मजिस्ट्रेट के समक्ष यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या वह अंतिम आख्या पर कोई आदेश पारित करने हेतु सशक्त है, विशेषकर यदि वह पूर्ववर्ती पुलिस आख्या (प्राथमिक आख्या) प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् अपराध का संज्ञान ग्रहण कर चुका हो। यह दुविधा दो कारणों से उत्पन्न होती है। प्रथम यह कि, एक बार किसी भी रूप में न्यायालय द्वारा आदेश पारित हो जाने पर वह अपने ही आदेश का पुनर्विलोकन नहीं कर सकता। द्वितीय यह है कि, इस धारणा का अस्तित्व कि एक बार मजिस्ट्रेट द्वारा आरोप-पत्र पर संज्ञान ग्रहण का आदेश पारित हो जाने पर वह किसी अग्रतर अनुपूरक आख्या (अंतिम आख्या) पर कोई आदेश पारित करने हेतु अपेक्षित नहीं है। किंतु दोनों तर्क विधि के मूल सिद्धांतों के विरुद्ध हैं।

13. किसी अपराध का संज्ञान ग्रहण करने का कार्य प्रारंभिक आख्या के प्रस्तुत किए जाने मात्र से पूर्ण नहीं होता। विवेचनाधिकारी का यह कर्तव्य कि वह अन्वेषण को उसकी तार्किक परिणति तक ले जाए, "प्राथमिक आख्या" के पश्चात् भी बना रहता है। जिस प्रकार विवेचनाधिकारी को अंतिम तार्किक परिणति प्राप्त होने तक अन्वेषण जारी रखना होता है, उसी प्रकार मजिस्ट्रेट का दायित्व तब तक बना रहता है जब तक पुलिस अपनी अंतिम निर्णायक आख्या प्रस्तुत न कर दे। परिणामतः, मजिस्ट्रेट कर्तव्याबद्ध है कि वह न्यायिक मस्तिष्क का प्रयोग करे तथा एकल प्रकरण के अन्वेषण के दौरान प्रस्तुत समस्त पुलिस आख्याओं पर विचार करे।

14. अब पूर्व में उल्लिखित मजिस्ट्रेट की दुविधा पर विचार करना प्रासंगिक होगा। पुनर्विलोकन सामान्यतः न्यायालय द्वारा किसी त्रुटि के सुधार हेतु अपने ही निर्णय की पुनः परीक्षा को संदर्भित करता है। इस चरण पर दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 362 का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा जो निम्नवत् है:-

"धारा 362:- इस संहिता द्वारा या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अन्यथा

उपबंधित के सिवाय, कोई न्यायालय, किसी मामले का निपटारा करने वाले अपने निर्णय या अंतिम आदेश पर हस्ताक्षर करने के पश्चात्, उसे केवल लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि के सुधार को छोड़कर, परिवर्तित या पुनर्विलोकित नहीं करेगा।"

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



15. उक्त धारा के पठन से यह स्पष्ट है कि यह केवल किसी प्रकरण के गुणागुण, तथ्यों अथवा विधिक निष्कर्षों की पुनः परीक्षा को ही प्रतिबंधित करती है। आपराधिक मामलों में पुनर्विलोकन की शक्ति को कृतकृत्याधिकार के सिद्धांत के कारण प्रतिबंधित किया गया है – एक बार न्यायालय द्वारा अपने निर्णय अथवा अंतिम आदेश पर हस्ताक्षर कर दिए जाने पर, उस विशिष्ट विषय पर उसकी अधिकारिता समाप्त हो जाती है। अतः यह स्पष्ट है कि धारा 362 दण्ड प्रक्रिया संहिता का उपबंध केवल उन्हीं मामलों पर लागू होता है जहाँ न्यायालय ने "प्रकरण का निस्तारण" किया हो।

16. किंतु जहाँ मजिस्ट्रेट को विभिन्न आदेश पारित करने होते हैं, उसी प्रकार अन्वेषण के प्रकरण में इस तथ्य के साथ कि उसे धारा 173 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत पुलिस द्वारा प्रस्तुत प्रत्येक आख्या पर अपना न्यायिक मस्तिष्क प्रयोग करना होता है, उसका न्यायिक कर्तव्य सतत रहता है। विभिन्न चरणों पर भिन्न-भिन्न तथ्य उद्भूत हो सकते हैं और स्वाभाविक रूप से उसे अपना न्यायिक मस्तिष्क स्वतंत्र रूप से प्रयोग करते हुए पृथक्-पृथक् आदेश पारित करने होंगे। धारा 362 दण्ड प्रक्रिया संहिता पुनर्विलोकन को प्रतिषिद्ध करती है, किंतु यह मजिस्ट्रेट को नवोद्भूत तथ्यों पर धारा 173(8) के तहत नवीन आदेश पारित करने से नहीं रोकती। अतः यदि उसे, न्यायिक मस्तिष्क का प्रयोग करने के पश्चात्, अन्वेषण कार्यवाहियों की निरंतरता के दौरान कोई विरोधाभासी आदेश पारित करना पड़े, तो उसके पूर्ववर्ती संज्ञान ग्रहण के आदेश के प्रतिकूल पारित परवर्ती आदेश, पूर्व आदेश का "पुनर्विलोकन" नहीं होगा, अपितु वह नवीन तथ्यों पर मात्र एक नवीन आदेश होगा। "प्राथमिक आख्या" प्रस्तुत होने पर पूर्व चरण में संज्ञान ग्रहण का आदेश पारित करना, धारा 362 दण्ड प्रक्रिया संहिता में उल्लिखित अर्थ में प्रकरण का "निस्तारण" नहीं करता। इसी प्रकार, धारा 173 के तहत प्रस्तुत अंतिम आख्या उक्त धारा के तहत प्रस्तुत किसी अन्य आख्या से भिन्न नहीं होती। आख्याएँ या तो अपराध के कारित होने को प्रकट कर सकती हैं अथवा इस आशय से प्रस्तुत की जा सकती हैं कि कोई अपराध कारित होना नहीं पाया गया। धारा 173 के तहत प्रस्तुत आख्या की विषय-वस्तु उस आख्या की प्रकृति को परिवर्तित नहीं करेगी तथा मजिस्ट्रेट उस पर आदेश पारित करने हेतु आबद्ध है। अतः दोनों भ्रांतियाँ निराधार हैं।

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



17. अब इस अपील हेतु विरचित प्रश्न पर आते हुए, इस विवादक को संबोधित करने हेतु उच्चतर न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि का विवेचन करना प्रासंगिक होगा। विनय त्यागी (उपर्युक्त) में उच्चतम न्यायालय के समक्ष एक समान प्रश्न उठाया गया था। तथापि, उसका संदर्भ कुछ भिन्न था। उच्चतम न्यायालय द्वारा जिस प्रश्न पर विचार किया गया वह यह था, "क्या धारा 173 दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में 'संहिता') के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए विचारण न्यायालय को यह अधिकारिता प्राप्त है कि वह किसी आख्या को उपेक्षित करे, जब न्यायालय के आदेशों के अनुक्रम में एक ही अथवा भिन्न-भिन्न अन्वेषण अभिकरणों द्वारा दो आख्याएँ प्रस्तुत की गई हों? यदि हाँ, तो किस प्रभाव से?" उच्चतम न्यायालय का उत्तर था;

"31. ...न्यायालय के आदेशों के अधीन, जिसमें मजिस्ट्रेट के आदेश भी सम्मिलित

हैं, अथवा पुलिस द्वारा स्वयमेव तथा विधिमान्य कारणों से संचालित अग्रतर अन्वेषण के परिणामस्वरूप अनुपूरक आख्या दायर होगी। ऐसी अनुपूरक आख्या को प्राथमिक आख्या के भाग के रूप में माना जाएगा। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि धारा 173(3) से धारा 173(6) के उपबंध धारा 173(8) संहिता के अनुसार ऐसी आख्याओं पर लागू होंगे।

32. दोनों आख्याओं को संयुक्त रूप से पढ़ा जाना चाहिए तथा यह आख्याओं एवं

उनसे संलग्न दस्तावेजों का संचयी प्रभाव है जिस पर न्यायालय से यह अपेक्षित है कि वह अपना मस्तिष्क प्रयोग करे ताकि यह अभिनिश्चित किया जा सके कि क्या यह अनुमान करने हेतु आधार विद्यमान हैं कि अभियुक्त ने अपराध कारित किया है। यदि इन आख्याओं के आधार पर उत्तर नकारात्मक हो, तो न्यायालय धारा 227 के उपबंधों के अनुपालन में अभियुक्त को उन्मोचित करेगा।"

18. उच्चतम न्यायालय ने तत्पश्चात् अपने समक्ष विवादक का उत्तर देते हुए अभिनिर्धारित किया कि;

"48. एक बार आख्या तहत धारा 173(2) संहिता दायर हो जाने के पश्चात्, उसे

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



केवल सक्षम अधिकारिता के न्यायालय द्वारा ही, तथा वह भी विधि के अनुसार, निरस्त किया जा सकता है, आगे बढ़ाया जा सकता है अथवा प्रकरण बंद किया जा सकता है। न तो पुलिस को और न ही किसी विशेष अन्वेषण अभिकरण को उक्त आख्या को निरस्त करने का कोई अधिकार है। इसके अतिरिक्त, वर्तमान प्रकरण में उच्च न्यायालय द्वारा दिल्ली पुलिस द्वारा अग्रतर अन्वेषण अथवा सक्षम अधिकारिता के न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों पर रोक लगाने वाला कोई आदेश अथवा निर्देश पारित नहीं किया गया था।

49. इसके विपरीत, न्यायालय ने अपने आदेश में स्पष्ट रूप से अभिलक्षित किया था

कि यह अनुपूरक अथवा अग्रतर अन्वेषण तथा अनुपूरक आख्या दायर किए जाने का प्रकरण था।

50. न्यायालय द्वारा यह दृष्टिकोण अपनाए जाने के पश्चात्, प्रथम आख्या को विवक्षित

रूप से प्रत्याहृत, निरस्त अथवा अभिलेखों से बाहर किए जाने योग्य मानने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। वस्तुतः, ऐसे आदेश पारित करने हेतु सक्षम उच्चतर न्यायालय के विशिष्ट आदेश के अतिरिक्त, पूर्ववर्ती आख्या तथा अनुपूरक आख्या दोनों उस अभिलेख का भाग होंगी जिस पर विचारण न्यायालय से विधि के अनुसार किसी समुचित निष्कर्ष पर पहुँचने हेतु विचार किए जाने की अपेक्षा है। यह भी उल्लेखनीय है कि केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने स्वयं न्यायालय के आदेश को समझा तथा केवल 'अग्रतर अन्वेषण' ही संचालित किया, जो केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा दिनांक 28 नवम्बर, 2007 को उच्च न्यायालय के समक्ष दायर की गई स्थिति आख्या से स्पष्ट है।

51. हमारे सुविचारित मत में, विचारण न्यायालय को समग्र अभिलेख पर विचार करना होगा, जिसमें धारा 173(2) संहिता के तहत दायर दिल्ली पुलिस की आख्या तथा केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा दायर समापन आख्या एवं इन आख्याओं के साथ दायर दस्तावेज सम्मिलित हैं।

52. प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय के समक्ष तीन विकल्प हो सकते हैं:

प्रथमतः, वह अभियुक्त के उन्मोचन हेतु आवेदन स्वीकार कर सकता है। द्वितीयतः, वह यह निर्देशित कर सकता है कि विचारण विधि के अनुसार अग्रसर हो तथा तृतीयतः, यदि वह पूर्व में संचालित अन्वेषण के किसी महत्वपूर्ण पहलू से असंतुष्ट हो तथा अपने सुविचारित मत में

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



न्यायहित में 'अग्रतर अन्वेषण' का निर्देश देना उचित, समीचीन एवं आवश्यक हो, तो वह ऐसा कर सकता है।"

19. अतः उपर्युक्त निर्णय से यह स्पष्ट है कि अनुपूरक आख्या तहत धारा 173 दण्ड प्रक्रिया संहिता को प्राथमिक (प्रारंभिक) आख्या का अभिन्न अंग माना जाना चाहिए। किसी निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व, न्यायालय को इस धारा के तहत प्रस्तुत समस्त आख्याओं को संयुक्त रूप से (समग्रतः एक साथ) पढ़ते हुए उनके संचयी प्रभाव का मूल्यांकन करना होगा तथा यह अभिनिश्चित करने हेतु आख्याओं पर अपना मस्तिष्क प्रयोग करेगा कि क्या यह अनुमान करने हेतु पर्याप्त आधार विद्यमान हैं कि अभियुक्त ने अपराध कारित किया है। उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित प्रस्थापना उस समय भी समान रूप से लागू होगी जब मजिस्ट्रेट के समक्ष एक से अधिक पुलिस आख्याएँ विचारार्थ हों तथा उसे आदेश पारित करना हो।

20. ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है, जैसा कि इस प्रकरण में हुई है, जहाँ विवेचनाधिकारी द्वारा आरोप-पत्र प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् अंतिम आख्या तहत धारा 173 दण्ड प्रक्रिया संहिता प्रस्तुत की जाए, जो किसी ऐसे अपराध को प्रकट करे जिसका संज्ञान न्यायालय धारा 190 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत पहले ही ग्रहण कर चुका हो। ऐसी परिस्थितियों पर उच्चतम न्यायालय द्वारा भी विचार किया गया है। यह विवादक **राम लाल नारंग इत्यादि इत्यादि बनाम दिल्ली राज्य (प्रशासन)**, 1979 AIR 1791, 1979 SCC (2) 322 में उच्चतम न्यायालय के समक्ष आया तथा न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:-

"आपराधिक न्यायालयों की दैनिक कार्यप्रणाली से परिचित कोई भी व्यक्ति पुलिस के पास अग्रतर अन्वेषण करने तथा अनुपूरक आख्या प्रस्तुत करने की शक्ति होने की व्यावहारिक आवश्यकता से अवगत होगा। यह अभियोजन एवं बचाव दोनों के हित में है कि पुलिस के पास ऐसी शक्ति हो। यह सहज कल्पनीय है कि ऐसा प्रकरण हो जिसमें नवीन सामग्री प्रकाश में आए जो पूर्व में अभियुक्त न किए गए व्यक्तियों को संलिप्त करे अथवा पूर्व में अभियुक्त किए गए व्यक्तियों को दोषमुक्त करे। जब अन्वेषण अभिकरण को यह विदित हो कि किसी अपराध के पूर्व अभियुक्त व्यक्ति के पास अन्यत्र उपस्थिति (ऐलिबाई) का सशक्त साक्ष्य है, तो क्या उस

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



अभिकरण का यह कर्तव्य नहीं कि वह अन्यत्र उपस्थिति के अभिवाक् की वास्तविकता का अन्वेषण करे तथा मजिस्ट्रेट को आख्या प्रस्तुत करे? वस्तुतः अन्वेषण अभिकरण के पास किसी निजी व्यक्ति की तुलना में अधिक संसाधन उपलब्ध होते हैं। इसी प्रकार, जहाँ पूर्व में अभियुक्त न किए गए व्यक्तियों की संलिप्तता अन्वेषण अभिकरण के संज्ञान में आए, तो अन्वेषण अभिकरण मौन नहीं रह सकता तथा नवीन सूचना का अन्वेषण करने से इनकार नहीं कर सकता। अन्य व्यक्तियों की संलिप्तता के संबंध में अन्वेषण करना तथा मजिस्ट्रेट को आख्या प्रस्तुत करना उनका कर्तव्य है। किसी भी परिस्थिति में, प्रकरण उसके समक्ष किस चरण पर है, इस पर निर्भर करते हुए मजिस्ट्रेट को अपनी भावी कार्यवाही का मार्ग विनिश्चित करना है। यदि वह अपराध का संज्ञान ग्रहण कर चुका हो, किंतु जाँच अथवा विचारण के साथ अग्रसर न हुआ हो, तो वह नव-अन्वेषित संलिप्त व्यक्तियों के विरुद्ध आदेशिका जारी करने का निर्देश दे सकता है तथा समस्त अभियुक्तों के संबंध में एकल जाँच अथवा विचारण में निपटारा कर सकता है। यदि वह प्रकरण जिसका उसने पूर्व में संज्ञान ग्रहण किया हो, कुछ सीमा तक अग्रसर हो चुका हो, तो वह नव-संलिप्त अभियुक्तों के विरुद्ध प्रकट अपराध का नवीन संज्ञान ग्रहण कर सकता है तथा प्रकरण को पृथक् वाद के रूप में अग्रसर कर सकता है। ऐसी परिस्थितियों में दण्ड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अनुसार मजिस्ट्रेट को क्या कार्यवाही करनी है, यह वह विषय है जो मजिस्ट्रेट के विवेक पर सर्वोत्तम रूप से छोड़ा जाना चाहिए। यह आलोचना कि पुलिस द्वारा अग्रतर अन्वेषण न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों का अतिक्रमण करेगा, वास्तव में अधिक सारवान् नहीं है, क्योंकि पुलिस जो भी करे, अग्रतर कार्यवाही के संबंध में अंतिम विवेकाधिकार मजिस्ट्रेट के पास ही है। यह कि अंतिम निर्णय मजिस्ट्रेट के पास है, अग्रतर अन्वेषण करने की पुलिस की शक्ति के किसी भी अत्यधिक प्रयोग अथवा दुरुपयोग के विरुद्ध पर्याप्त रक्षोपाय है।”

21. इस विवादक का पुनः उच्चतम न्यायालय द्वारा **धर्मात्मा सिंह बनाम हरमिंदर सिंह एवं अन्य, 2011 (74) ACC 266 (SC)** में परीक्षण किया गया, जहाँ न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:-

"10. इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जहाँ धारा 173(2) दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत मजिस्ट्रेट को प्रेषित पुलिस आख्या यह कहे कि किसी व्यक्ति ने अपराध कारित किया है, किंतु

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



अन्वेषण के पश्चात् धारा 173(8) दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत अग्रतर आख्या यह कहे कि उक्त व्यक्ति ने अपराध नहीं कारित किया, वहाँ यह मजिस्ट्रेट के लिए है कि वह यह मत गठित करे कि क्या दोनों आख्याओं में उपवर्णित तथ्य उस व्यक्ति द्वारा कारित अपराध गठित करते हैं। यह व्याख्या इस न्यायालय द्वारा **अभिनंदन झा एवं अन्य बनाम दिनेश मिश्रा [AIR 1968 SC 117]** में दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 173 एवं धारा 190 के उपबंधों को दी गई थी, जो दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के समान थे। **अभिनंदन झा (उपर्युक्त)** में, AIR के पृष्ठ 122 पर पैरा 15 में इस न्यायालय ने अभिलक्षित किया:

'... पुलिस, ऐसे अन्वेषण के पश्चात्, उनके द्वारा किए गए अग्रतर अन्वेषण पर निर्भर करते हुए, आरोप-पत्र प्रस्तुत कर सकती है अथवा पुनः अंतिम आख्या प्रस्तुत कर सकती है। यदि अंततः मजिस्ट्रेट यह मत गठित करे कि अंतिम आख्या में उपवर्णित तथ्य अपराध गठित करते हैं, तो वह अंतिम आख्या में व्यक्त पुलिस की विपरीत राय के बावजूद, धारा 190(1)(b) के तहत अपराध का संज्ञान ग्रहण कर सकता है।'''

22. अतः यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि यदि आरोप-पत्र प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् पुलिस द्वारा अंतिम आख्या प्रस्तुत की जाए, जिस पर मजिस्ट्रेट संज्ञान ग्रहण का आदेश पहले ही पारित कर चुका हो, तो उसे दोनों आख्याओं में उपलब्ध विषय-वस्तु पर अपना न्यायिक मस्तिष्क प्रयोग करने के पश्चात् अंतिम आख्या पर एक अन्य आदेश पारित करना होगा। उसे निष्कर्ष पर पहुँचने हेतु दोनों आख्याओं का संयुक्त रूप से मूल्यांकन करना होगा। पुनः, उसके पास वही विकल्प उपलब्ध हैं जो धारा 173(2) दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत "प्राथमिक आख्या" उसके समक्ष रखे जाने के समय उपलब्ध होते हैं, अर्थात् संज्ञान ग्रहण करते हुए आदेशिका जारी करना, अंतिम आख्या स्वीकार कर कार्यवाही समाप्त करना, अथवा अग्रतर अन्वेषण का निर्देश देना। यह संज्ञान-पश्चात् अनुपूरक पुलिस आख्याओं का स्वतंत्र मूल्यांकन करने के मजिस्ट्रेट के सतत कर्तव्य को सुनिश्चित करता है, जिससे प्रक्रियात्मक निष्पक्षता बनी रहती है।

23. अतः मजिस्ट्रेट/न्यायालय प्रत्येक पश्चातवर्ती आख्या तहत धारा 173(8) पर आदेश पारित करने हेतु आबद्ध हैं, जब तक कि अनुपूरक आरोप-पत्र में नवीन सामग्री का अभाव न हो। यह प्रस्थापना उच्चतम न्यायालय द्वारा **मरियम फसीहुद्दीन एवं एक अन्य बनाम राज्य द्वारा**

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



अडुगोडी थाना एवं एक अन्य: 2024 LiveLaw (SC) 53 में अभिनिर्धारित की गई, जहाँ यह अभिनिर्धारित किया गया कि:-

"27. अनुपूरक आख्या प्रस्तुत करने का उपबंध यह उपदर्शित करता है कि नवीन मौखिक अथवा दस्तावेजी साक्ष्य अभिप्राप्त किया जाना चाहिए, न कि प्रारंभिक पुलिस आख्या, जिसे आरोप-पत्र तहत धारा 173(2) दण्ड प्रक्रिया संहिता के नाम से जाना जाता है, प्रस्तुत करते समय अन्वेषण अभिकरण द्वारा पहले से एकत्रित एवं विचारित सामग्री का पुनर्मूल्यांकन अथवा पुनर्आकलन किया जाना चाहिए। अनुपूरक आख्या में विवेचनाधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को पुष्ट करने हेतु कोई नवीन साक्ष्य न पाए जाने की दशा में, न्यायिक मजिस्ट्रेट संज्ञान ग्रहण करने हेतु बाध्य नहीं है, क्योंकि ऐसी आख्या अन्वेषणात्मक सुदृढ़ता से रहित है तथा धारा 173(8) दण्ड प्रक्रिया संहिता की अपेक्षाओं को संतुष्ट नहीं करती। इस प्रकरण के अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों से जो स्पष्ट होता है, वह यह है कि अन्वेषण अभिकरण ने विचारण मजिस्ट्रेट के आदेश दिनांकित 24.06.2015 के तात्पर्यित अनुपालन में यांत्रिक रूप से कार्य किया।"

24. अतः यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि यदि मजिस्ट्रेट ने किसी अपराध का संज्ञान ग्रहण कर लिया हो तथा तत्पश्चात् विवेचनाधिकारी द्वारा अंतिम आख्या (समापन आख्या) यह कहते हुए प्रस्तुत की जाए कि कोई प्रकरण नहीं बनता, तो मजिस्ट्रेट उस आख्या की उपेक्षा नहीं कर सकता। वह विधितः आबद्ध है कि अंतिम आख्या पर विचार करे तथा उस पर समुचित आदेश पारित करे। वह उसे स्वीकार कर सकता है, अस्वीकार कर सकता है, अथवा उसके बावजूद संज्ञान ग्रहण कर सकता है, किंतु उसे आख्या पर अपने न्यायिक मस्तिष्क का प्रयोग करना ही होगा। यदि मजिस्ट्रेट अंतिम आख्या पर बिल्कुल विचार किए बिना ही प्रकरण में आगे अग्रसर हो जाए, तो ऐसी निष्क्रियता प्रक्रियात्मक अवैधता गठित करती है।

25. अतः उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि-

(i) धारा 173(2) दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत विवेचनाधिकारी द्वारा दायर प्रारंभिक आख्या (प्राथमिक आख्या) प्रत्येक अनुपूरक आख्या से भिन्न नहीं होती।

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



(ii) यद्यपि मजिस्ट्रेट पुलिस आख्या पर केवल एक बार संज्ञान ग्रहण करने हेतु सशक्त है, तथापि यदि अनुपूरक पुलिस आख्याएँ दायर की जाएँ, तो उसे ऐसी अनुपूरक आख्याओं को प्राथमिक (प्रारंभिक) आख्या तहत धारा 173(2) दण्ड प्रक्रिया संहिता का अभिन्न अंग मानना होगा।

(iii) किसी निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व प्राथमिक आख्या (प्रारंभिक आख्या) तथा समस्त पश्चातवर्ती अनुपूरक आख्याओं को संयुक्त रूप से पढ़ा जाना चाहिए।

(iv) प्रत्येक अनुपूरक आख्या पर मजिस्ट्रेट/न्यायालय स्वतंत्र रूप से अपने मस्तिष्क का प्रयोग करने हेतु आबद्ध है, बिना प्राथमिक आख्या (प्रारंभिक आख्या/आरोप-पत्र) पर संज्ञान ग्रहण के अपने पूर्ववर्ती आदेश से प्रभावित हुए।

(v) यदि मजिस्ट्रेट, अनुपूरक आख्या पर अपने न्यायिक मस्तिष्क का प्रयोग करने के पश्चात्, आरोप-पत्र (प्राथमिक आख्या) पर संज्ञान ग्रहण के अपने पूर्व निर्णय के विपरीत किसी निष्कर्ष पर पहुँचे, तो ऐसे विपरीत मत का अभिलेखन उसके पूर्ववर्ती आदेश का पुनर्विलोकन अथवा प्रत्याहार नहीं माना जाएगा।

26. तदनुसार, अपील अनुमत की जाती है। आक्षेपित आदेश दिनांकित 21.08.2024, 27.06.2024 तथा 10.05.2024, जिनके द्वारा आरोप-पत्र दिनांकित 15.9.2025 पर संज्ञान ग्रहण के अनुसरण में अपीलकर्तागण के विरुद्ध आदेशिकाएँ जारी की गई थीं, तथा आरोप विरचन के आदेश दिनांकित 7.8.2025 सहित अन्य समस्त पारिणामिक आदेश अपास्त किए जाते हैं। विद्वान विचारण न्यायालय को निर्देशित किया जाता है कि वह प्रथमतः अंतिम आख्या पर विचार करे तथा प्रारंभिक आख्या (आरोप-पत्र) एवं अंतिम आख्या दोनों पर विचार करने के पश्चात् आदेश पारित करे। यदि तत्पश्चात् वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि दोनों आख्याओं का संयुक्त वाचन प्रथम दृष्ट्या अपीलकर्तागण के विरुद्ध प्रकरण गठित करता है, तभी वह अपीलकर्तागण के विरुद्ध आरोप विरचित करने हेतु अग्रसर होगा।

27. निबंधक (अनुपालन) को निर्देशित किया जाता है कि वह इस निर्णय/आदेश को समस्त जिला न्यायालयों को संसूचित करें।

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



(अनिल कुमार-X, न्यायमूर्ति)

13 फरवरी, 2026

उज्ज्वल

Translated version. Not for Legal Use.

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"